तारतम मंजरी

वर्ष २, अंक १०, फरवरी २०१७, पृष्ठ २८

ब्रह्म ज्ञान ही अमृत है

प्रेम ही जीवन है

स्वत्वाधिकारी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड रोड, सरसावा, जिला-सहारनपुर, उ.प्र.

Web : spjin.org

Gmail- shriprannathgyanpeeth@gmail.com

अनुक्रमणिका

इस अंक में.....

०१. बड़ो की आज्ञा में अपनापन होना चाहिए	जुनेजा बाबुजी	०१
०२.खटरूती टीका के अंश	स्वामी जी	०२
०३.हमें क्या चाहिए सोचो?	मधुसुदन मल्होत्रा	०५
०४.आओ जागे	बबली माताजी	०६
०५.तुम आए सब आइया.....	जै किशन निजानंदी	०६
०६.मनुष्य तन	बिन्धु अधिकारी	१५
०७.त्याग महान	.....	१७
०८.एक परिचय	.....	१८
०९.आत्म-निर्भरता	कनेश्वर	१९
१०.मृत्यु के बाद भी खत्म नहीं होता मोह	.....	२०
११.जीने की कला	.....	२१
१२.जीवन दर्शन	नीरज	२२
१३.निर्मन	बबली माता जी	२३

आवश्यक सूचनायें

प्यारे सुन्दरसाथ जी! जिस किसी सुन्दरसाथ जी ने आर्थिक सेवा एकत्र करने हेतु पिछले सत्र या सन् 2015 की रसीद बुक ले रखी हैं कृपया वे अपनी–अपनी सत्र की रसीद बुक जल्द ही धनराशि के विवरण सहित श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ में जमा करवाने का कष्ट करें तथा आगामी सन् 2016 की कोई भी रसीद काटने हेतु नये सत्र की रसीद बुक ज्ञानपीठ से पुनः प्राप्त करें।

प्रणाम जी

प्रकाशक :–
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट,
नकुड़ रोड, सरसावा
जिला–सहारनपुर, उत्तर प्रदेश
फोन – 01331 246000, 246871
वेबसाईट :– www.spjin.org
ई मेल :– shriprannathgyanpeeth@gmail.com

सदस्यता शुल्क

भारत में	विदेश में
वार्षिक 130 रू.	.....
आजीवन 1300 रू.	.....

लेख में प्रगट किये गये विचार लेखक के व्यक्तिगत विचार हैं इनके प्रति सम्पादक, प्रकाशक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्यायक्षेत्र सहारनपुर होगा।

(सम्पादकीय)
बड़ों की आज्ञा में अपनापन होना चाहिए

आज के वातावरण में इन दिनों माता-पिता और बच्चों में वाद-विवाद, तना-तनी, तथा कई प्रकार की झंझटे चल रही हैं। उनमें से एक है कहना न मानने की। माता-पिता बड़े हैं, वो सोचते हैं कि बच्चे तो अभी बच्चे ही हैं अपने भविष्य के बारे में उतना नहीं जानते, जितना कि हम जानते हैं। इसलिए हम जो कहते हैं उसे बच्चों को मानना ही चाहिए।

दूसरी ओर बच्चे पढ़े लिखे हैं वो सोचते हें कि हम कोई नादान नहीं हैं, अब समझदार हो गये हैं। क्या जरूरी है कि हम इनकी हर बात को, हर आदेश को माने?जो हमें ठीक लगेगा हम वही करेंगे। दोनों अपनी-अपनी जगह ठीक हैं। बाहर की दुनिया इतनी तेजी से बदल रही है कि घर में ज्यादा कायदे लादे जाएं तो बच्चे घर छोड़ कर चले जाते हैं। बाद में वो बाहर से घर की ओर मुड़ना नहीं चाहते।

(१) यदि आप माता-पिता हैं तो बच्चों को केवल आदेश देने से काम नहीं चलेगा। पहले के माता-पिता मानते थे के हमने आदेश दिया तो बच्चों को उसका पालन करना ही है। लेकिन अब, आज के वातावरण में ऐसा नहीं है। आपकी आज्ञा में अपनापन होना चाहिए, जिसमें तीन बातें होनी चाहिए। समझाइश, सुझाव और निवेदन। ये तीनों जब ठीक से मिल जाएं तब आज्ञा में अपनापन पैदा हो जाएगा। इस प्रकार आजकल के बच्चे इसे तो फिर भी मान लेगें पर यदि उन्हें केवल आदेश दिया तो मानकर चलिए कि मत भेद बढ़ना ही है। तो माता-पिता के रूप में आज्ञा में अपनापन लाएं।

(२) यदि आप बच्चे हैं और माता-पिता की आज्ञा या कहना नहीं मानना चाहते तो उद्दण्डता का व्यवहार न करें। उनकी आज्ञा को नहीं मानने के लिए तीन काम बच्चों को भी करना चाहिए। एक, तुरन्त प्रतिक्रिया न दें। एकदम से ना ना कहें। थोडी देर रूक जाएं। हो सकता है आपका यह रूकना आप ही को कुछ अच्छी बात समझा दे। दूसरा, इनकार में भी विनम्रता होनी चाहिए। तीसरा, माता-पिता के शब्दों में विश्वास रखें। न कहने का भी सही कारण बतायें।

इस प्रकार विश्वास, विनम्रता और धैर्य, यदि इन तीनों के साथ इनकार करेगे तो बात बिगड़ेगी नहीं। वरना कहना न मानना परिवार में उपद्रव का एक बड़ा कारण बन जाता है।

इसलिए जिन परिवारों के बच्चों में माता-पिता की आज्ञा मानने या न मानने के लिए उनके प्रति आदर, विश्वास, धैर्य और विनम्रता होती है और माता-पिता की आज्ञा में अपनापन हमेशा बना रहता है उन परिवारों के सभी सदस्यों का जीवन सुखमय व शांति पूर्वक व्यतीत होता है।

प्रणाम जी

जुनेजा बाबू जी

खटरूती टीका के अंश

गतांक से आगे

रे ऊधवडा विरह मा नंदनो कुंअर, एणी अमकने खरी रे खबर।

विरह मा जोयो लाधे ततपर, ते ऊधव अमे भूलूं केम अवसर।।

हो स्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूं।।

गोपियां कहती हैं- हे उद्धव! यह बात हमें अच्छी तरह से मालूम है कि हमारी इस विरह की अवस्था में भी नन्दकुमार हमारे मध्य में ही हैं। यदि विचार करके देखा जाये तो विरह के द्वारा उनको अति शीघ्र पाया जा सकता है। इसलिये हे उद्धव! इस सुनहले अवसर को हम क्यों गवायें अर्थात् तुम हमें अपने कन्हैया के विरह में ही रहने दो।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी कहती हैं- हे बालबाई जी! हमें अच्छी तरह से मालूम है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी अन्तर्धान होने के पश्चात् भी हमारे इस विरह की अवस्था में हमारे बीच में ही है। श्रीबिहारी जी या उनकी गादी (मथुरावासी श्रीकृष्ण) में नहीं हैं। हे बालबाई जी! देखिये! वे विरह की अवस्था में अति शीघ्रता से मिलते हैं। ऐसे शुभ अवसर को हम क्यों गवायें ?

रे ऊधवडा अमारो धणी अममा गलियो,
तमे आवतांते सांसो सर्वे टलियो।
ऊधव तारी वातें चित अमारो न चलियो,

✍:—राजन स्वामी

विरह वधारी ऊधव पाछो वलियो।।
हो स्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूं।।

गोपियां कहती हैं! हे उद्धव! हमारे धनी हमारे धाम हृदय में विराजमान हैं। तुम्हारे आने से हमारे सारे संशय दूर हो गये हैं। तुम्हारी ज्ञान की बातों से हमारा चित्त जरा भी विचलित नहीं हुआ है अर्थात् हम पूर्ववत् एकमात्र कृष्ण को ही अपना आराध्य मानेंगी, तुम्हारे निराकार परमात्मा को नहीं। इस प्रकार गोपियों का विरह बढ़ता ही रहा और उनको समझाने में असफल उद्धव वापस लौट गये।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी कहती हैं- हे बालबाई जी! मेरे धनी तो मेरे अन्दर विराजमान हैं। आपने श्रीबिहारी जी एवं गादी की महिमा को सर्वोपरि बताकर मेरे अन्दर का सारा भ्रम दूर कर दिया है। अब मैं यह निश्चित रूप से जान गयी हूँ कि धाम धनी न तो श्री बिहारी जी के अन्दर है और न गादी के ही अन्दर। हे बालबाई जी! आपके द्वारा गादीवाद का गुणगान किये जाने पर भी विश्वास धनी के मूल स्वरूप से हटा नहीं है। आपकी भ्रमित करने वाली बातों से अपने मूल धनी के प्रति मेरा विरह और बढ़ गया है।

सखियो हवे घरडा सहुए संभारो,
रखे कोई वालाजीने दोष देवरावो।
ए विरह मांहेना मांहेज मारो,
सखियो एतो नहीं घर बार

उघारो।।
हो स्याम पिउ पिउ करी रे
पुकारूं।।

गोपियां कहती हैं- हे सखियों! अब तुम सभी अपने-अपने घर को सम्हालो। किसी भी तरह से अपने प्रियतम की गरिमा को दोष न लगने दो। अपने विरह के दुःख को अन्दर ही अन्दर छिपाये रखो। अपने मन के दुःखों को कभी भी किसी के सामने प्रकट न करो।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! अब आप सब अपना ध्यान अपने मूल घर परमधाम की तरफ कीजिए। अपने प्रियतम अक्षरातीत के ऊपर इस बात का दोष न लगने दीजिए कि वे हमें छोड़कर चले गये। प्रियतम के विरह में होने वाले दुःख को अपने मन में ही सहन करें। उसे सबके सामने प्रकट न होने दें।

सखियो तमे मूको रे बीजी सहु
वात,
आपण ऊपर निसंक पडी रे
निघात।
दुखे केम मूकिए गोपीनो नाथ,
हवे आपोपूं नाखो जेम रहे
अख्यात।।
हो स्याम पिउ पिउ करी रे
पुकारूं।।

गोपियां कहती हैं- हे सखियों! अब तुम इन सारी बातों को छोड़ दो। निश्चित् रूप से हमारे ऊपर प्रियतम के विरह का कष्ट आ गया है, किन्तु दुःख की इस घड़ी में भी हम अपने कन्हैया को कैसे छोड़ सकते हैं ?हमें स्वयं को अपने कान्हा के प्रेम में समर्पित कर देना चाहिये जिससे हमारी गरिमा बनी रहे।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के रूप में लीला करने वाले अक्षरातीत भले ही हमसे अन्तर्धान हो गये हैं, किन्तु वे हमसे दूर नहीं हैं। विरह के इस कष्ट को सहन करते हुये आप सकारात्मक भावों के साथ यही मानिये कि वे हमारी आत्मा के धाम हृदय में विराजमान हैं और हम उनके चरणों से पल भर के लिये भी स्वयं को अलग न करें तथा उनके प्रेम में स्वयं को पूर्णतया समर्पित कर दें। ऐसा करने पर ही हमारा ब्रह्मसृष्टि कहलाना सार्थक होगा।

सखियो हवे विना घाय नाखो
आप मारी,
वालाजीना विरहनी वात
संभारी।
वसेके वली राखो घर
लोकाचारी,
हवे एवी कठण कसोटी खमो
नारी।।
हो स्याम पिउ पिउ करी रे
पुकारूं।।

गोपियां कहती हैं- हे सखियों! अब प्रियतम कान्हा के विरह की बातों को याद रखते हुए बिना चोट किये ही स्वयं को मार दो अर्थात् अपने अहंकार को नष्ट कर दो। पुनः अपने लौकिक उत्तरदायित्व को भी निभाओ। इस प्रकार अब अपने को इस कठिन कसौटी पर खरा सिद्ध कर दो (दुःख की इस घड़ी को धैर्यपूर्वक सहन करो)।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! अक्षरातीत धाम धनी ने सद्गुरु महाराज के रूप में हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप से लीला की किन्तु हम उन्हें

यथार्थ रूप से पहचान नहीं सके। अब उनकी प्रेम भरी लीलाओं को याद रखते हुये तारतम ज्ञान के प्रकाश में अपनी मैं खुदी के पर्दे को हटा देना है जिससे हमारी आत्मा के धाम हृदय में उनकी सुन्दर छबि बस जाये। इसके अतिरिक्त हमें अपने लौकिक उत्तरदायित्वों को भी निभाना पड़ेगा और यह सिद्ध करना होगा कि संघर्ष की किसी भी कसौटी पर हम स्वयं को खरा सिद्ध कर सकते हैं।

सखियो हवे विरहनी भारी रे उपाडो,
ए अंग मायाना माया माहें पछाडो।
ए विरह बीजा कहेने मा देखाडो,
सखियो विना रखे कोणे बार उघाडो।।
हो स्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूं।।

गोपियां कहती हैं- हे सखियो! अब प्रियतम कान्हा के मथुरा चले जाने के विरह को धैर्यपूर्वक सहन करो। हमें इस मायावी जगत में जो पंचभौतिक तन मिला है, उसे सारहीन करके प्रियतम कान्हा के प्रेम में डूबे रहना है। अपने विरह की बातों को अन्य किसी से भी नहीं कहना है। गोपियों के अतिरिक्त अन्य किसी से भी अपने हृदय के प्रेम की बात नहीं करनी है।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी कहती हैं- हे साथ जी! बाह्य रूप से अन्तर्धान होने वाले प्रियतम अक्षरातीत के विरह को धैर्यपूर्वक सहन कीजिये। इस नश्वर जगत में जो हमें पंचभौतिक तन मिला है उसे अपने प्रेम की अग्नि से सारहीन कर देना है अर्थात् शरीर का मोह छोड़कर अपनी अन्तर्दृष्टि को प्राणेश्वर अक्षरातीत की शोभा में लगाये रखना है। धाम धनी के विरह को अन्य किसी से भी नहीं कहना है। सुन्दरसाथ के अतिरिक्त अन्य किसी से भी अपने आत्मिक सुख के भेदों को न बतायें।

सखियो मारो जीव जीवन मांहे भलियो,
अमें माया ग्रही तोहे ते पल न टलियो।
ए वालो अम विना कोणे न कलियो,
इंद्रावती कहे अमारो अमने मलियो।।
हो स्याम पिउ पिउ करी रे पुकारूं।।

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! अब इस नश्वर जगत में मेरे जीव के जीवन प्राणेश्वर अक्षरातीत मिल गये हैं। भले ही हम इस नश्वर जगत में आयें, किन्तु एक पल के लिये भी वे हम से अलग नहीं हैं। प्रियतम को हमारे बिना अन्य कोई भी पहचान नहीं सका। धाम धनी तो हमारे हैं इसलिये वे हमें प्राप्त हो गये। हे धनी मैं पल-पल आपको पुकार रही हूँ।

भावार्थ- इस चौपाई के प्रथम चरण को पढ़कर ही बिहारी जी नाराज हुये थे कि मिहिरराज ने कैसे यह दावा कर दिया कि उन्होंने धनी को पा लिया है ?''बिहारीजी चमके, सुन खटऋतु के वचन।'' वस्तुतः इस नश्वर जगत में श्री राज जी का निवास तो एकमात्र आत्मा के धाम हृदय में ही होता है।

प्रणाम जी

हमें क्या चाहिए, सोचो?

आज मुझे एक लघु कथा याद आ गई सुन्दरसाथ के साथ सांझा करता हूँ। एक बार गौतम बुद्ध से एक व्यक्ति ने पूछा कि भगवान आप दिन-रात हजारों लोगों को उपदेश देते रहते हैं पर जिज्ञासा वश पूछना चाहता हूँ कि आप के प्रवचनों से कितने लोग मुक्ति को उपलब्ध हुए हैं। तो गौतम बुद्ध ने कहा कि तुम्हारे इस प्रश्न का जवाब अवश्य दूंगा पर तुम्हें मेरा एक काम करना होगा। गांव में जाओ और प्रत्येक से उस की एक इच्छा पूछो और लिख कर ले आओ।

वह व्यक्ति गांव में गया और एक एक व्यक्ति से उस की इच्छा पूछ कर लिखने लगा। किसी ने पुत्र प्राप्ति की इच्छा की तो किसी ने उत्तम स्वास्थ्य की, किसी ने धन सम्पत्ति की तो किसी ने ऊँचे पदों की इच्छाएं जताई। शाम तक वह युवक सभी की इच्छाएं पूछ कर बुद्ध के पास आया और बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा।

बुद्ध ने कहा देखा तुम ने!

तुम ने इतने लोगों से उन की एक एक इच्छा पूछी पर किसी ने भी मोक्ष की, ध्यान की या परमात्मा की इच्छा नही बताई। स्वयं भगवान भी आ कर यदि लोगों से कुछ मांगने को कहें तो भी लोग परमात्मा से परमात्मा को नही बल्कि संसार को ही मांगेंगें।

लोग चेतना के जिन निम्न तलों पर आज हैं उससे ऊपर उठने की प्यास तो उन्हे स्वयं ही अपने भीतर लानी होगी। लोग जंजीरो को (माया की) आभूषण समझे बैठे हैं और आभूषणों को अज्ञान वश जंजीर बना बैठे हैं।

लोगों को होश में लाना ही होगा। समझ विकसित करनी ही होगी। जैसे जैसे होश और बोध सधता जाएगा। इस पार्थिव देह में चेतना ज्वार ऊर्ध्व गमन को उपलब्ध होता जायेगा।

परमात्मा तो वही देता है जो तुम्हारी चाहत है। ये तुम पर निर्भर करता है कि तुम उस से क्या मांगते हो?पहले आप उन लोगों को देखो जिन्होने संसार मांगा है क्या उन्हें संसार मिल गया है चाहे वह सिकंदर हो कि हिटलर या मिसोलिनी हो। फिर बुद्ध, महावीर और तीर्थंकरों, पैगम्बरों और अवतारों को देखो और प्यास को जगाओं तुम्हारे हर प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा। श्री राज जी से प्रेम चाहिये तो समर्पण खर्च करना होगा। विश्वास चाहिये तो निष्ठा पैदा करनी होगी।

हम सुन्दर साथ भी श्री राजन स्वामी जी से तथा ४०० सालों से और धर्म गुरूओं से वाणी चर्चा सुनते आ रहे हैं। इतना ज्ञान सुनने के बाबजूद हम भी श्री राजजी को नही संसार को ही उन से मांगते आ रहे हैं। जब तक हम अपने अन्दर प्यास नहीं जगाते वाणी चर्चा ४०० साल और सुन लें कुछ बनने वाला नहीं है।

प्रणाम जी

मधुसूदन मल्होत्रा

नूर महल

आओ जागें

तारतम ले लेने का यह मतलब नहीं कि हम परमधाम के हो गए। हम परमधाम के होंगे तो परमधाम चले ही जायेगे ऐसा कहते हुए भी सुना है पर परमधाम का वही होगा जो अपने दिल में युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी को बसायेगा।

हम जानते ही हैं हद-बेहद से परे वह स्वलीला अद्वैत परमधाम है, जहां के कण-कण में सच्चिदानन्द परब्रह्म की लीला होती है। श्री राज जी, श्यामा जी, सखियां, अक्षरब्रह्म और महालक्ष्मी इन पांचों का एक अद्वैत स्वरूप है। श्यामा जी आनन्द अंग है और अक्षरब्रह्म सत अंग।

अक्षरातीत का हृदय मारिफत का स्वरूप है। वह ही हकीकत के रूप में श्यामा जी, सखियों, अक्षरब्रह्म तथा महालक्ष्मी एवं पच्चीस पक्षों के रुप में लीला कर रहा है। किन्तु इस भेद का पता सखियों, श्यामा जी या अक्षरब्रह्म में से किसी को भी नही था। धाम धनी ने अपने दिल में यह बात ली कि श्यामा जी तथा सखियों को मैं इस बात की पहचान करा दूं कि उनका रूप मेरा ही स्वरूप है, तथा उनके अन्दर मेरा ही प्रेम (इश्क) है। पच्चीस पक्षों के रूप में शोभा एवं लीला भी मेरे ही हृदय का प्रकट रूप है।

एक पातसाही अर्स की, और वाहेदत का इस्क ।
सो देखलावने रूहों को, पेहेले दिल में लिया हक ।।

श्री राज जी ने दिल में इच्छा कर ली। इसे ही खेल का महाकारण कहते हैं। इस इच्छा को लेने से क्या हुआ कि अक्षरब्रह्म ने तीसरी भोम की पड़साल में विद्यमान सखियों को देखा तथा सखियों ने अक्षर को। दोनो ने एक दूसरे की लीला को देखने की इच्छा तभी की और यह बन गया खेल का कारण।

अक्षर मन उपजी ए आस, देखों धनी जी को प्रेम विलास ।
तब सखियों मन उपजी एह, खेल देखें अक्षर का जेह ।।

सबसे पहले हम वृज में आये। वृज की लीला कालमाया के ब्रह्माण्ड में हुई। वृज लीला पूरी नींद में हुई। इसमें अपने मूल घर एवं धनी से अपने मूल सम्बन्ध की कोई भी पहचान नहीं थी ।

पूरी नींद को जो सुपन, कालमया नाम धराया तिन।

महारास की लीला योगमाया (केवल ब्रह्म) के ब्रह्माण्ड़

में खेली। महारास की लीला आधी नींद आधी जाग्रत अवस्था में खेली गई अर्थात् सम्बन्ध का पता था, किन्तु मूल घर का पता नहीं था।

कछूक नींद कछु जाग्रत भए, जोगमाया के सिनगार जो कहे।

वर्तमान समय में चल रही जागनी लीला इसी कालमाया के ब्रह्माण्ड में हो रही है। किन्तु जागनी लीला में मूल घर एवं मूल सम्बन्ध आदि की पूर्ण पहचान तारतम वाणी से हो गयी है।

जब हमें तारतम वाणी से मूल घर की पहचान करा दी है तो हमें अपने मूल घर को दिल में बसाना पड़ेगा। परमधाम में वहदत की मारिफत क्या हैं, यह परमधाम में श्री राज जी भी बता नहीं सकते। यदि वाहेदत नहीं होती तो परमधाम में ही निर्णय हो जाता कि किसका इश्क बड़ा है सबकी मारिफत के स्वरूप स्वयं श्री राज जी अपनी पहचान देना चाहते हैं कि जो तुम्हारे स्वरूप दिख रहे हैं, ये अलग नहीं हैं तुमने अपने को अलग क्यों समझा है?

मैं हक अर्स में जुदा जानती, ल्यावती सब्द में वरनन ।।

रब्द क्यो हो रहा हैं? सखियों का कहना है कि हमारा इश्क बड़ा है। श्यामा जी कहती है कि मेरा इश्क बड़ा है। राज जी का कहना है कि मेरा इश्क बड़ा है। जब कोई जुदा ही नहीं सब एक रूप हैं तो किसका बड़ा किसका छोटा वैसे भी सब श्री राज से ही है। अब इस जागनी लीला में हम जान चुके हैं कि हमारा इश्क बड़ा नहीं है।

इस जागनी ब्रह्माण्ड के अन्दर हर आत्मा का दिल अर्श बनना है। आत्मा के अर्श दिल में परमधाम के पच्चीस पक्षों सहित युगल स्वरूप को विहार करना है। मूल मिलावे में जो भी सुन्दरसाथ बैठे हैं सबका दृश्य भी अपनी आत्म के धाम हृदय में देखें। अपनी आत्म की परआतम को देखें तभी तो हम जाग्रत कहलायेंगे। वरना हमें क्या पता हम परमधाम के हैं या नहीं।

जागनी का ब्रह्माण्ड बना ही इसलिए है कि जाग्रत हो कर खुद को देखें, अपने प्रियतम को देखे, अपने प्रियतम की लीला को देखें और खिलवत, वहदत, निसबत, इश्क की मारिफत को देखे जो परमधाम में नहीं देख सके थे। जागनी का तात्पर्य केवल तारतम लेना नहीं। जब आत्मा के धाम हृदय में युगल स्वरूप बस जाय, आत्मा को यह अहसास होने लगे कि जैसे मैं परमधाम में युगल स्वरूप को देख रही हूँ और परात्म से देख रही हूं वैसे मेरी आत्मा भी युगल स्वरूप को देख रही है, पच्चीस पक्षों को देख रही है। तब समझिए कि हमारी आत्मा जाग्रत हो गई है और जागनी के ब्रह्मांण्ड में यही करना है।

ऐसा आवत दिल हुकमें, यो इस्के आतम खड़ी होए।

हक सूरत दिल में चुभे, तब रूह जागी देखो सोए ।।

जो कोई आत्मा परमधाम की हो और वाणी के ज्ञान से जाग्रत हो गई हो वह अपने दिल में

युगल स्वरूप के चरणों को बसा कर अपने निजघर चले।

जो कोई आतम धाम की, इत हुई होए जाग्रत ।
सो इन स्वरूप के चरन लेय के, चलिये अपने घर ।।

ब्रज में जब आत्मायें बांसुरी की आवाज सुनकर योगमाया में पहुँची तो अपने प्रियतम को पाकर प्रेम और आनन्द की लीलायें की। उसी तरह से इस जागनी के ब्रह्माण्ड में ब्रह्म वाणी के ज्ञान के प्रकाश से हम अपने हृदय में स्थित माया के अन्धकार को दूर करें अपने धाम हृदय में प्रियतम को बसायें और जागनी रास का आनन्द लें। इसको कहते हैं जागनी और इसको कहते हैं दिल में अर्श का होना। आपके दिल में संसार बसा हुआ है। संसार को हटा कर दिल में धनी को बसा लीजिए तो आप का दिल कहलायेगा अर्श दिल ।

हमें हकीकत से आगे मारिफत की राह पर आगे बढ़ना है। मारिफत की उस अवस्था में श्री राज जी के सिवाय कुछ नहीं रहेगा न पच्चीस पक्ष रहेंगे न श्यामा जी रहेंगी। जब ये नही रहेंगी तो इस कालमाया के ब्रह्माण्ड में लीला करने करने वाला कोई तन भी नहीं रहेगा। सुन्दरसाथ सब कुछ भुला दे, व्रज में क्या हुआ, रास में क्या हुआ, अरब में क्या हुआ, देवचन्द्र जी के तन से क्या हुआ और हकी सूरत के भी तन से क्या हो रहा है?उसी तन में बैठे हैं। लेकिन जब मारिफत की अवस्था की बात की जायेगी तो सब कुछ भुलाना पड़ेगा। हम जिस श्यामा जी के अंग हैं, उधर से भी नजर हटानी पड़ती है क्योंकि उसी एक मूल स्वरूप से सब कुछ है। लीला का जब बयान होगा तो श्यामा जी भी हैं सखियां भी हैं, महालक्ष्मी भी हैं, पच्चीस पक्ष भी हैं।

अपने परिवार में रहते हुए परिवार के कर्तव्यों को पूरा कीजिये। समाज के उत्तरदायित्वों को पूरा कीजिये। लेकिन इसमें लिप्त न होइए। जैसे कमल का फूल पानी में उगता तो है लेकिन पानी में लिप्त नहीं होता। आपकी अन्तरात्मा का प्रेम अपने प्राण वल्लभ अक्षरातीत के लिये पहले नम्बर पर होना चाहिए।

सौ काम छोड़ कर भोजन कीजिए, हजार काम छोड़कर स्नान कीजिये, लाख काम छोड़कर वाणी पढ़िए और करोड़ काम छोड़कर युगल स्वरूप की चितवनी कीजिए। संसार के सारे काम बन्द हो जायं, लेकिन चितवनी के लिए चौबीस घण्टे में आपको समय निकालना ही पड़ेगा। तभी आपकी आत्मा जाग्रत होगी।

बबली नलीनी
सरसावा

"तुम आए सब आइया, दुख गया सब दूर"

सुन्दरसाथ जी! शाश्वत् सुख तथा शान्ति की प्राप्ति के लिए उपनिषदों में एक ही रास्ता बताया है कि प्रेम और आनन्द के अनंत सागर उस अक्षरातीत परब्रह्म हम आत्मसात होकर साक्षात्कार करें । कठोपनिषद का कथन है कि अपनी आत्मा से जिसने परब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है, एक मात्र उनके ही पास शाश्वत सुख है, शाश्वत शान्ति है, अन्य के पास नहीं।

तमात्मस्थं ये अनुपश्यन्ति धीराः तेषां शान्तिः शाश्वत नेतरेषाम्।

ब्रह्मवाणी में भी कहा गया है कि हे सुन्दरसाथ जी! अपना मूल सुखों का जो स्थान है, वह है परमधाम। आप अपनी आत्मिक नजर से उस आनन्दमयी परमधाम का अपलक दीदार कीजिए। साथ ही अपने युगल स्वरूप की सुन्दर शोभा को अपने दिल में बसाकर, अपनी आत्म के नैनों से युगल स्वरूप को जीभर कर निहारिए। ऐसा करने से आपको आत्मिक सुख और शान्ति मिलेगी।

इतथे नजर न फेरिए, पलक न दीजे नैन।
नीके सरूप जो निरखिए, ज्यों आतम होए सुख चैन।। सा० १०/४२

उपरोक्त कथनों से यह स्पष्ट होता है कि सारे सत् सुखों का मूल अक्षरातीत ही है। उन्हें पीठ देकर कोई सपने में भी सुखी नहीं हो सकता है। इसलिए बड़ी वृत में महामती जी कहते हैं कि हे साथ जी! आप अपना सारा ध्यान अक्षरातीत के सत् सुख को पाने में केन्द्रित करो। संसार के सारे अनावश्यक कार्यो को छोड़कर एक मात्र अपने प्राण-प्रियतम के अति सुन्दर मुख कमल को देखो। जिससे तुम्हारा हृदय भी अक्षरातीत के प्रेम-आनन्द से भर जाए और दीदार रूपी सुख से तुम्हारी आत्म तृप्त हो जाए।

महामत कहे ए मोमिनों, तुम देखों अपना सुख।
और सब धंधा छोड़ के, देखों नूरजमाल का मुख।। बड़ी वृत ११/४३

महामती जी तो कह रहे हैं कि-'' और सब धंधा छोड़ के, देखों नूरजमाल का मुख''- किन्तु हम क्या कर रहे हैं- परमधाम और राज जी को छोड़ो और देखों माया का झूठा सुख। माया के झूठे सुख की प्राप्ति के लिए अपना ६६ % का समय यूँ ही

गुजार देते हें, जो झठे सुख दिखलाकर दुःख ही दुःख देने वाली है। परन्तु जो सदा सत् सुख के दातार हैं उनके लिए अपने समय का एक प्रतिशत भी मुश्किल से दे पाते हैं। ऐसी अवस्था में अखंड सुख की कामना करना तो मृगजल से प्यास बुझाने के समान है। हम माया के झूठे सुख की चाहत में जितना अधिक समय बितायेंगे, उतना ही हम माया के दुःख रूपी बंधन में बंधते चले जायेंगे। हमारा हृदय माया के विकार रूपी दुःख से ग्रसित हो जाएगा और हमारा जीव जन्म-मरन के फेरों से निकल नहीं पाएगा। जन्म -मरन के चक्कर में पड़ जाने पर हमारे जीव को न जाने कितने अनगिनत दुःख-कष्टों का सामना करना पडेगा, जिसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते हैं। ऐसी विकट स्थिति से अपने जीव को बचाने और अपने आत्मिक सुख को पाने के लिए एक ही उपाय है कि हम अपनी नजर को माया से हटाकर परमधाम की शोभा में लगा दे।

देखों मंदिर मोहोल झरोखे, ज्यों छूट जाए दुख धोखे।
देखों झूठी फेर फेर मारे, सत सुख बिना कोई ना उबारे।। कि.१७६/१६

आज हम मायावी विकारों और दुःखों से इतना ग्रसित हैं कि सत् सुख की बूँ दूर-दूर तक नजर नहीं आती है। इसका मूल कारण यह है कि जो अक्षरातीत सारे सुखों का मूल है, उनको तो हमने अपने दिल में बसाने का प्रयास ही नहीं किया। परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कहलाने वाले हम सुन्दरसाथ से तो यही आशा की जा सकती है कि माया की झूठी चाहनाओं और विकारों को अपने दिल से निकाल कर, उसमें अपनी प्रियतम की छवि को बसाएं। प्रियतम की छवि हृदय में बसते ही मायावी विकार और दुःख स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं और आत्म के हृदय में अपने प्राण-प्रियतम एवं अखंड परमधाम की अखंड आनंद की वर्षा होने लगती है।

जब ए सुख अंग में आवहीं, तब छूट जाएं ए विकार।
आयों आनन्द अखण्ड घर को, श्री अछरातीत भरतार।। कि० ७३/१६

इसलिए वाणी में कहा गया है कि हे परमधाम की ब्रह्मात्माओं तुम प्रेममयी चितवनि की गहराई में डूबकर अपने सत् सांई अक्षरातीत के प्रेममयी शोभा-श्रृंगार का दीदार कीजिए, साथ ही अपने प्राण-प्रियतम से प्रेममयी मीठी-मीठी बातें करो और उनकी प्रेममयी लीला के विलास में स्वयं को विलीन कर दो। ऐसा करने से तुम्हारे संसार के सारे चाहत समाप्त हो जाएंगे। जैसे-जैसे तुम्हारे हृदय में सत् सुख के आनंद आते जाऐंगे, वैसे-वैसे मायावी विकार और दुःख समाप्त होते जायेंगे। एक

दिन ऐसा भी आएगा कि आपका हृदय पूर्णतयाः दुःख रहित और विकार रहित बिल्कुल निर्मल हो जाएगा और उस हृदय में सदैव प्रियतम का आनंद रूपी अमिरस का झरना बहा करेगा।

सत सांई सो करो विलास, तब टूट जाए झूठी आस।
ज्यों ज्यों लेओगे सत सुख, त्यों छूटे असत दुख।। कि० ७६/१४

मेरे प्राण-प्रियतम अक्षरातीत की लीला भी न्यारी है। वे अपनी आत्माओं को आनंद रूपी अमिरस का पान कराने के लिए सदैव- तत्पर रहते हैं। अपनी आत्माओं को नये-नये सुख देने का विचार उनके हृदय में सदैव उठता रहता है। उनकी एक मजबूरी भी है कि वे अपनी आत्माओं से एक पल के लिए भी अलग नहीं रह सकते हैं। भले ही हम उनको पीठ देकर माया को गले से लगाएं क्यों न रहें। भले ही हम उनकी पुकार को सुनकर भी अनसुना क्यों न कर दें। किन्तु वह अपना आशिकपना निभाना नहीं छोड़ हैं और कहते है कि हे मेरी रूहो! मैं तुम्हारा सच्चा आशिक हूँ। तुम्हारे हृदय से मायावी दुःखों को निकाल कर, उसमें अपने सत् सुख का आनंद भर दूँ। बस इसी चाहत में मैं सदा लगा रहता हूँ। इसके साथ ही तुम्हारे हृदय को विभिन्न प्रकार के सत् सुखों का रसस्वादन कराने हेतु तुम्हारे हृदय में मैं अपना इश्क उपजाना चाहता हूँ, तांकि तुम्हारा हृदय मेरे इश्क रूपी रस से भरा रहे।

रूहों मैं-रे तुमारा आसिक, मैं सुख सदा तुमें चाहो।
वास्ते तुमारे कई विध के, इश्क अंग उपजाऊं।।
सिनगार २६/१

श्री राज जी तो अपना आशिकपना परमधाम में भी अच्छी तरह निभा रहे थे और आज इस संसार में भी निभा रहे हैं। किन्तु क्या हम अपना माशूकपना निभा सके हैं ?मेरे प्राण-वल्लभ तो कहते है कि-" रह न सकूं मैं रूहों बिना" और हम जवाब में क्या कहते हैं- रह न सकें हम माया बिना। आखिरकार वह अक्षरातीत यह भी कहता है कि-" एक साद करो मुझको, तो मैं जी जी कहूं दस बेर।" पर हमें माया के झूठे रिश्ते-नातों को रिझाने से फुरसत मिले तब ना अक्षरातीत को रिझाने के बारे में सोचेंगे। झूठे रिश्ते-नाते को रिझाने के लिए हम अपना दिन-रात को एक कर देते हैं। इतना करने के पश्चात् भी क्या हम उनको रिझा पाते हैं ? आज नहीं तो कल वे (रिश्ते-नाते) अपना रोष प्रकट कर ही देते हैं। जिस रिश्ते-नाते के लिए हम अपना खून-पसीना एक कर दते हैं, क्या वे हम से इतना प्रेम करते हैं कि हम उनको एक बार आवाज लगाए

और वह दस बार जी-जी कह कर हामी भरे ?अन्तर आत्मा से आवाज आएगी ''नहीं''।

इस संसार में अक्षरातीत से ज्यादा प्रेम करने वाला कोई नहीं है। इतना जान कर भी हमारा हृदय दुःख देने वाली माया को छोड़ नहीं सकता और सुख देने वाले अक्षरातीत से जुड़ नहीं पाता। इसे हम अपनी बद्किस्मत कहे या नादानी कुछ समझ नहीं आता जो अक्षरातीत कहता है कि हे मेरी आत्मा! फूल के पांखुड़ी से मारने पर जितना दुःख (ना के समान) होता है, मैं अब तुमको उतना दुःख भी नहीं देना चाहता हूँ मैं अपने प्रेम भरे शीतल नैनों से तुम्हें देखना चाहता हूँ, तांकि तुम्हारे हृदय में भी प्रेम की शीतलता आ जाए। इसके साथ ही मैं तुम्हारे अंग-अंग में अपने अखंड सुख को बसा देना चाहता हूँ, जिससे तुम्हारा हृदय अखंड आनंद की अनूभूति कर सके और अपनी मीठी जुबां से तुम से प्रेम भरी बातें करना चाहता हूँ, तांकि तुम्हारे विरह रूपी उदासीपन को हटा सकूं। मैं अपनी प्रेम की मस्ती तुमको ऐसा देना चाहता हूँ, जिसके आनंद में तुम्हारे होठ सदैव मुस्कुराते रहें।

अब दुख न देऊ फूल पांखुड़ी, देखू सीतल नैन।
उपजाऊं सुख सबों अंगो, बोलाऊं मीठे बैन।।

क०हि० २३/४

ऐसे सर्वगुण निधान अक्षरातीत को पाने का सुनहरा अवसर हमें मिला है। इस अवसर को अपने हाथ से किसी भी हालत में जाने नहीं देना चहिए। माया की झूठी चाहत में हमने अनगिनत माया के दुःख-कष्टों को झेला है। अब वक्त है धनी को पाने हेतु कसौटियों पर खड़ा उतरने का। अपनी नजरों से तो हमने माया के बहुत दुःख देखे हैं, किन्तु अब समय है अपनी प्रेमभरी नजरों से, प्रेममयी चितवनि के द्वारा परमधाम के नूरी नजारों को देखने का। हमने माया के झूठे सुखों का स्वाद-दुःख के रूप में तो बहुत चखा है, किन्तु अब मौका मिला है परमधाम के आनंद को आत्मसात् करने का। मायावी लोगो के आगे तो हम बहुत गिरगिड़ाए हैं, अब अवसर है अपने प्राण-प्रियतम से रूबरू मीठी-मीठी बातें करने का। धनी की मेहेर से ऐसा करने में यदि हम सफल हो जाते हैं, तो निश्चित रूप से यह हम कह पायेंगे कि-'' तुम आए सब आइया, दुख गया सब दूर।''

किन्तु यह बात भी सत्य है कि इस उपलब्धि (अवस्था) को सरलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता। जो अक्षरातीत समस्त सुखों का मूल है, सारे ब्रह्माण्ड का स्वामी है, उनको अपने हृदय में बसाने के लिए, अनेको कसौटियों पर खड़ा उतरना अनिवार्य है। संसारिक तृष्णाओं के प्रति त्याग भावना, धनी के प्रति समर्पित भावना और हृदय में

विरह भावना का होना अत्यन्त आवश्यक है। और सबसे बड़ी बात जो है- अपने को प्रेममयी चितवनी में डुबोए रहना। धनी को अपने दिल में बसाने के लिए इतना तो करना ही होगा। तभी जाकर हम दुःख रूपी संसार को छोड़, सुख रूपी सागर अक्षरातीत को अपने धाम हृदय में बसा पायेंगे।

श्री मिहिरराज जी की आत्म श्री इन्द्रावती जीने भी यही किया। कसौटियों की अग्नि में तपाकर अपने गुण-अंग-इन्द्रियों को निर्विकार कर, अपने शरीर को हड्डियों का ढाँचा बना दिया। उनके हृदय में विरह की ऐसी ज्वाला उठी कि अपने जीव को भी शरीर छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया। तब जाकर अक्षरातीत ने प्रत्यक्ष होकर दीदार दिया। और इन्द्रावती जी को सान्तवना देते हुए जागनी लीला की सारी बात श्री राज जी ने समझाया। और श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान होकर वह सुख दिए, जिसकी कल्पना श्री इन्द्रावती जी ने भी नहीं की थी। इन्द्रावती जी ने तो एक ही सुख की मांग की थी कि धनी मुझे केवल आपका दीदार चाहिए। किन्तु, श्री राज जी ने इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान होकर अनेक विध के सुख दिए। सारे ब्रह्माण्ड के जीवों को अखंड मुक्ति दिलाने वाले, ईश्वरी सृष्टि को परमधाम की सुधी दिलाने वाले और ब्रह्मसृष्टियों को अखंड सुख की लज्जत दिलाने वाले ऐसे महान तारतम वाणी का प्रकाशन श्री राज जी ने श्री इन्द्रावती के द्वारा करवाए। इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है। सातवें दिन की लीला से सारे ब्रह्मांड के जीव श्री इन्द्रावती जी के द्वारा धारण किये गये जीव को अक्षरातीत मान कर पूजा करेंगे। इससे बड़ी उपाधि और क्या हो सकती है। श्री इन्द्रावती जी के हृदय में अक्षरातीत के बस जाने पर इन्द्रावती जी को अक्षरातीत के दिल में निहित इश्क के सागर को मापने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहां तक कि श्री राज जी ने तो अपना नाम, श्रृंगार, शोभा सब कुछ श्री इन्द्रावती जी को दे दिया। इससे बड़ी आनंद की बात श्री इन्द्रावती जी के लिए और क्या हो सकती है।

सुन्दरसाथ जी ऐसे अनगिनत सुख हैं, जो श्री इन्द्रावती जी ने लिये। उस सुख का वर्णन भला यहाँ के शब्दों से कैसे हो सकता है। इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे सखी! जब मेरे पिया दर्शन देकर मेरे हृदय मंदिर में विराजमान हो गये, तब मेरे सारे लौकिक और विरह का दुःख समाप्त हो गया। और मेरा हृदय प्रियतम के प्रेम रूपी आनंद से भर गया।

मेरे हृदय में उमंग का आलम ऐसा छाया कि जिसकी मस्ती से ब्रह्मवाणी का अवतरण प्रारम्भ हुआ। इस अलौकिक वाणी के प्रताप से श्री मिहिरराज जी के दोनों भाई श्यामल जी व उधव जी ने भी अखंड सुख का रसपान किया।

दुख मोसों जात रह्या, आया अंग में उमंग।
रामत भई सब रास की, सुख पायों जो थे संग।। बीतक० १७/५२

जिस सुख को पाकर इन्द्रावती जी की आत्म धन्य-धन्य हो गयी उस सुख को हम भी आज हृदयांगम कर सकते हैं। अक्षरातीत को अपने दिल में बसाने के लिए जितनी कसौटी श्री इन्द्रावती जी ने की, उतनी अधिक कसौटी करने की आवश्यकता भी नहीं है। किन्तु कुछ न कुछ कसौटियों का अंगीकार तो करना ही होगा, अपने प्राण-प्रियतम को दिल में बसाने के लिए। यह भी सत्य है कि जिस दिन अपने प्रियतम का दीदार कर लेंगे, उस दिन हमारे अन्दर ना किसी प्रकार का दुःख होगा और ना विकार। केवल आनंद ही आनंद होगा। इस अवस्था के प्राप्ति हेतु अपने प्राण-प्रियतम को अपने धाम हृदय में बसाने के सिवाय और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

इसलिए सुन्दरसाथ जी! समय रहते ही परमधाम की प्रेममयी चितवनि में लग जाना चाहिए। चितवनि के द्वारा परमधाम में पहुँच कर अपने प्राण-प्रियतम के नूरी मुखार बिन्द का दीदार करेंगें तो हमारी आत्म को अनन्त सुखों का अनुभव होगा और हमारे हृदय में अपने पिया के प्रति अनन्त प्रेम उत्पन्न हो जाएगा। जैसे-जैसे हमारी आत्म अपने प्राण-प्रियतम के शोभा-श्रृंगार में डूबती जाएगी, वैसे-वैसे हमारे हृदय में अनन्त आनंद और अनन्त शान्ति की प्रेमरूपी अमृत धारा और तीव्र गति से बहने लगेगी।

ए मुख देख सुख पाइए, अपजत है अति प्यार।
देख देख जो देखिए, तो रूह पावे करार।।
सिन० १२/५१

इन सारी बातों का एक ही सार है सुन्दरसाथ जी कि जो अक्षरातीत समस्त सुखों का मूल है, उनको ही अपने दिल में बसा लें। क्योंकि-

कौन देवे इत सुख बका, बिना इन खसम।।
खि० ६/४४

-ईति-

प्रणाम जी!

आपका
जै किशन निजानंदी
निजानंद सत्संग भवन, माटीपूल

मनुष्य तन

प्यारे सुन्दरसाथ जी इस दुनियामें कितने प्रकार के प्राणी लाखों एवं करोड़ों हैं परन्तु, उन प्राणियों में से एक मनुष्य ही है जो सर्वश्रेष्ठ प्राणी है।

अब यह विचार करने कि बात है कि मनुष्य तन को सर्वोपरि प्राणी क्यों कहा गया है?- सुन्दरसाथ जी मनुष्य में विवेक ज्ञान, बुद्धि, अच्छा-बुरा आदि विभिन्न प्रकार के ज्ञान हैं जो अन्य पशु-पक्षियों में नहीं हैं। इसलिए मनुष्य को ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा गया है। मनुष्य और अन्य पशु- पंक्षियों में चार समानता (बराबर) होती हैं-१. आहार २. निद्रा ३. भय ४.मैथुन।

सुन्दरसाथ जी हमें यह तन मिलने के लिए क्या कुछ होना नहीं पड़ा। इस दुनिया में जितने भी पशु-पक्षी,कीट-पंतग हैं उन सब ८४ लाख योनियों में घूमने के बाद बहुत कष्ट से यह मनुष्य तन मिला। इसलिए इस तन को व्यर्थ में भी गमाना नहीं चाहिए। वाणी में कहा गया है-

मानखे देह अखण्ड फल पाइए, सो क्यों पाए के वृथा गमाईए।
ए तो अधखिन को अवसर, सो गमावत मांझ नींदर।।

सुन्दरसाथ जी यह मनुष्य तन हमें बार-बार नहीं मिलता बहुत भाग्य से ही हमें यह तन मिला है, अगर हमलोगों नें इसे व्यर्थ खाने-पीने, और- मस्ती करने में गंवा दिया तो हम में और अन्य पशु-पंक्षियों में कुछ भी फरक नहीं रहेगा क्योंकि यह सब तो पशु- प्राणी भी करते हैं।

यह तन हमें पारब्रह्म परमात्मा की पेहेचान करने के लिए मिला है। इसलिए इस जागनी ब्रह्माण्ड में परब्रह्म परमत्मा की (श्री प्राणनाथ जी) पहेचान करे और उनकी राह पे चलने की कोशिश करें। पारब्रह्म की पेहेचान करने के लिए हमारे दिलमें प्रेम, स्नेह, आहार शुद्ध होना चाहिए। किसी अन्य सुन्दरसाथ के दिल दुखाने से राज जी की प्राप्ती नहीं होगी क्योंकि हमें यह समझ लेना चाहिए कि जैसे पुष्प(फूल) में सुगंध रहती है उसी प्रकार सुन्दरसाथ (ब्रह्मसृष्टि) के दिल में राज जी रहते हैं। वाणी में भी कहा गया है।

रेहेवे निर्गुन होए के, और आहार भी निर्गुन।
साफ दिल सोहागनी, कबहु ना दुखावें किन।।

जो सुन्दरसाथ परमधाम की ब्रह्मसृष्टि यानी राज जी की सोहागनी है वो कभी भी दूसरों के दिलको ठेस नहीं पहुँचाती।

सुन्दरसाथ जी हम परब्रह्म परमात्मा श्री राज जी को एकमात्र चितवनी ध्यान द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। केवल भजन-किर्तन करने से राज जी की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि यह सब हम जाहिरी दृष्टि से कर रहे हैं। आत्मिक दृष्टि से नहीं। सुन्दरसाथ जी संसार मे कितने ऋषि- मुनियों ने परमात्मा की एक झलक पाने के लिए कितनी तपस्या की। शिव - सनकादिक को भी परमात्मा की एक भी झलक उनलोगों को प्राप्ती नहीं हो सकी। निगम अगम केहेने के अलवा कुछ भी जान नहीं सके।

अगम जानिके निगम कहावे, खोज खोजी पछि हारे।

सुन्दरसाथ जी हम लोग तो कितने भाग्यशाली हैं इस २८ वें कलियुगमें श्री राज जी ने खुद आकर इन्द्रावती के धाम दिल में विराजमान होकर वाणी, चितवनी द्वारा हमें मूल स्वरूप श्री राज- श्यामा जी की पेहेचान करा कर इस संसार के भवसागर पार करने के लिए मार्ग बता दिया।

सुन्दरसाथ जी अब हमें उस पल को याद करना चाहिए, जहाँ हमलोगों ने संसार में आने से पेहेले श्री राज जी से वादा किया था कि-

कहया उतरते हकने,अलस्तो बे रब कुम।
फेर कहया अरवाहों ने, वले न भूलें हम।।

राज जी हम आपको नहीं भूलेगें कुछ कारणवश भूल गए, तो एक दूसरे, के सहारे याद करेंगे। अब हम इस झूठे खेलमें आ गए हैं तो कैसे उस पल को भूल जाएं। इसलिए सुन्दरसाथ जी अब वह दिन आ गया है कि उस पारब्रह्म परमात्मा (श्री प्राणनाथ जी) की पेहेचान को सारी दुनिया में फैला दिया जाय और अपनी आत्मा की जाग्रति कराकर इस संसार रूपी भवसागर से पार करें। क्योंकि सुन्दरसाथ जी समय बहुत कीमती है। किरंतन वाणी में कहा गया है-

इन समें खिन को मोल नहीं, तो क्यों कहुं दिन मास बरस।
सो जनम खोया झूठ बदले, पिउ सो भई न रंग रस।।

प्यारे सुन्दरसाथ जी मैने श्री राज जी की मेहेर से इस छोटे से लेख में अपना भाव प्रगट किया है, भूल तो अवश्य ही हुई होगी उसमें सुधारकर पढ़ने का कष्ट करें।

प्रणाम जी

श्री बिन्दु अधिकारी (शुकलाई)

त्याग–महान

एक फकीर के पास एक महाजन आया। वह कुछ दिन उनके सानिध्य में रहने का इच्छुक था। फकीर ने उसे सहर्ष अनुमति दे दी। जब महाजन ने फकीर के साथ रह कर उनके त्यागमय जीवन को देखा, तो वह बहुत प्रभावित हुआ। उनसे विदा लेते वक्त उसने फकीर को कुछ भेंट देनी चाही, किन्तु फकीर ने कहा 'मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, यदि देने की इच्छा रखते हो तो किसी जरूरत मंद की सहायता करो'। महाजन को हैरानी हुई, क्योंकि फकीर के पास एक फटी चादर और पहनने के वस्त्र के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। वह उन्हें प्रणाम कर चला आया।

घर आ कर जब उसने फिर से अपने व्यवसाय को संभाला तो उसका मन नहीं लगाा उसे महसूस हुआ कि आदमी के जीवन का उद्देश्य मात्र पैसा कमाना ही नहीं है, बल्कि उसे आत्मविकास की दिशा में कुछ सार्थक करना चाहिए। बहुत सोचने के बाद उसने ऐशो–आराम का जीवन त्यागने का निर्णय लिया। परिवार के विरोध के बावजूद उसने अपने छोटे भाई को सारे कारोबार की कमान दे दी और स्वयं संन्यासी बन गया।

वर्षों बाद उसकी फकीर से भेंट हुई। उसने फकीर को अपना परिचय देकर उनसे प्रभावित हो संन्यास ग्रहण करने की बात बताई। फिर वह बोला, आप वास्तव में धन्य हैं। आपका त्याग अद्‌भुत है, जिससे मैं गहरे तक प्रभावित हुआ'। उसकी बात सुन कर फकीर ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, 'तुम्हारा त्याग मुझसे बढ़कर है, क्योंकि मेरा जीवन तो आरम्भ से ही ऐसा रहा है, पर तुम तो अमीरी में पले हो। सच्चे त्यागी तो तुम हो, जिसने कुबेर के पद को छोड़कर फकीरी का वेश धारण किया।' तुम्हारा त्याग महान है।

''एक परिचय''

परमात्मा की कृपा इतनी असीम है कि जब-जब धर्म और सत्य पर अन्याय के बादल मंडराने लगते है तब-तब ब्रह्म-ज्ञान रूपी सूर्य महान पुरूषों के दिलों को रोसन करता है। उसी रोसनी के द्वारा मानव समाज की अज्ञानता दूर होती है। किसी भी महान व्यक्ति का व्यक्तित्व ही उसकी पहचान है। फल की कीमत उसके बीज से आंकी जाती है। सूर्य की पेहेचान उसकी किरणें ही फैलाती हैं। ब्रह्मज्ञान की ज्योति जलाने वाले श्री सरकार जी को कौन नहीं जानता है। श्री निजानन्द सम्प्रदाय और श्री प्राणनाथ जी को जाहेर करने का बीड़ा इन्होंने उठाया और पूरा करते हुए अपनी अंतिम सांस तक सुन्दरसाथ की सेवा में जुटे रहे। इन का परिचय समाज में एक ब्रह्ममुनि की रेहेनी की मिसाल है।

जन्मः- श्री सरकार जी (श्री जगदीश चन्द्र जी) का जन्म (हाल में प० पाकिस्तान) के मिन्टगुमरी जिला में एक उच्च संस्कारी परिवार में हुआ था। श्री मती माया बाई कितनी तपस्विनी रही होंगी कि जिन की कोख से ५ फरवरी १९२५ में एक ऐसे बालक का जन्म हुआ जो आगे चल कर मानव समाज का 'प्यारा जागनी रत्न हमारा' से जाहेर हुए। इनकी बहिन जनक दुलारी जी थी। पिता काशी राम जी सुन्दर साथ के लिए अपने घर में ही मन्दिर बनवाये थे। पूरा परिवार पहले से ही परमात्मा और धर्म में लगन रखता था। श्री सरकार जी बंटबारे के बाद भारत के कई शहरों में रहते हुए अन्त में बड़े महाराज श्री राम रतन दास जी से प्रभावित हो कर दीक्षा ग्रहण शेरपुर (जडौदा पांडा) में किया। फिर तो क्या रतन में रतन मिलकर जागनी रतन हो गये। और सेवा का कार्य अपने सिर पर ले लिया। गुजरात, पंजाब, राजस्थान, उ० प्र० और अन्य प्रान्तों में जागिनी शिविर लगा-लगा कर लाखों सुन्दर साथ में वन्दनीय हो गये। आज उन्हीं के कृपा पात्र अनेकों जगहों पर ज्ञान केन्द्रों का संचालन करते हुए समाज सेवा और जागनी में लगे हुए हैं। हम सबको मिलकर प्रेम का संदेश मानव समाज को देना चाहिए और ध्यान साधना में जुट कर इसे ही अपना लक्ष्य बनाना चाहिए।

आत्म–निर्भरता

एक विधवा माँ ने अपने इकलोते पुत्र को मेहनत-मजदूरी कर खूब पढ़ाया-लिखाया। लड़का शिक्षित तो हो गया, किन्तु समझदारी नहीं आई। माँ की दी हुई सुविधाओं से वह आलसी हो गया। माँ उसे नौकरी करने को कहती तो वह कल पर टाल देता। थक-हार कर माँ ने यह कहना बंद कर दिया, किंतु अब वह रोज उसे खाना परोस कर यह अवश्य कहती,''बेटा ठंडी रोटी खालो। लड़का समझ नहीं पाता कि माँ गर्म रोटी को ठंडी रोटी क्यों कहती है। कुछ दिनों बाद उसकी मां ने उसका विवाह कर दिया। लड़का तब भी नहीं सुधरा और कोई काम नहीं खोजा। फिर एक दिन माँ को किसी काम से बाहर जाना था, तो वह जाते समय बहू को कह गई कि जब भी तुम्हारा पति आए तो उसे खाना परोस कर कहना कि ठंड़ी रोटी खालो। बहू ने ऐसा ही किया। आज लड़का नाराज हो गया, क्यों कि माँ के बाद अब पत्नी भी वही कह रही है। उसने अपनी पत्नी से कहा, ''रोटी ठंड़ी कैसे हुई जबकि तुम गर्म बना कर दे रही हो ? वह बोली, ''आप जब माँ आ जाए तो उनसे पूछ लेना। उन्होंने ही मुझे कहा था कि भोजन परोसने पर यही बात कहना।

कुछ दिनों बाद माँ जब घर आ गई तो बेटे ने उनसे इस बात का कारण पूछा। तो माँ बोली, बेटा! तू खुद ही सोच कि दूसरे की कमाई से जो रोटी खाई जाए तो वह ठंड़ी और बासी ही तो कहलाएगी। गर्म रोटी तो तू तब खाएगा, जब तू खुद कमा कर लाएगा। लड़का माँ की बात सुन कर शर्म से पानी-पानी हो गया। कुछ ही दिनों में लड़के ने नौकरी तलाश ली। कहानी का संकेत यह है कि शिक्षा की सार्थकता विचारों में परिपक्व संपन्नता और व्यवहार में आत्म निर्भरता लाने में निहित है।

कनेश्वर

विद्यार्थी ज्ञानपीठ

मृत्यु के बाद भी खत्म नहीं होता मोह

कहते हैं मोह मृत्यु के बाद भी समाप्त नहीं हो पाता है। सौराष्ट्र की एक सत्य घटना है। एक छोटे से गांव में बेचर भक्त रहते थे। ये अपने सरल स्वभाव के कारण जाने जाते थे। एक बार इनके गांव में एक साधु आए। वे आगे तीर्थ के लिए कहीं जा रहे थे। साधु ने कपड़े में लपेटी हुई एक पुस्तक बेचर भक्त को दी और कहा कि मैं तीर्थ के लिए जा रहा हूं, लौटकर यह पुस्तक आपसे ले लूंगा। जब काफी दिन बीत गए और साधु महाराज नहीं आए तो बेचर भक्त ने उस कपड़े को खोला यह जानने के लिए कि इसमें क्या है ?भीतर एक पुस्तक निकली और साथ में एक सांप का बच्चा। बेचर भक्त ने चिमटी से पकड़कर सांप के बच्चे को दूर फेंक दिया, लेकिन उन्होंने देखा कि वह फिर से आकर पुस्तक पर पहुंच गया। उन्हें लगा कि जरूर इसमें कुछ है। पुस्तक की जिल्द हटायी तो उन्हें इस बात को लेकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहां सबसे छिपाकर पांच रूपए का नोट रखा हुआ था।

बेचर भक्त ने पांच रूपए का नोट अलग रख दिया और पुस्तक अलग रख दी। तब सांप का बच्चा पांच रुपए के नोट पर जाकर बैठ गया। बेचार भक्त को संदेह हुआ कि संभवतः महात्माजी का देहांत हो गया होगा। और रुपए में उनकी वासना होने के कारण वे इस रूप में टिक गए। तब बेचर भक्त ने अपने हाथ में गंगा जल लेकर संकल्प किया हे महाराज जी, यदि आपका मन रुपयों में टिक गया है तो मैं इस वासना से मुक्त करने के लिए इन पांच रुपयों सेमन्दिर में भोग दूंगा। जैसे ही उन्होंने संकल्प का जल छोड़ा, सांप का बच्चा तुरंत मर गया। ऐसा होता है, मृत्यु के बाद भी यदि वासना तीव्र रूप से टिकी रहे तो मनुष्य दिवंगत होकर भी मोह में उलझा रह जाता है।

मृत्यु के बाद भी यदि वासना तीव्र रूप से टिकी रहे, तो मनुष्य दिवंगत होकर भी मोह में उलझा रह जाता है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तपो न तप्तं वयमेव तप्ता।

कालो न यातो वयमेव याता, तृष्णा न जिर्णा वयमेव जिर्णा।।

जीने की कला

अक्सर मनष्य अपने भविष्य के संदर्भ में चिंतित रहता है ।वह अतीत और भविष्य के बारे में सोचता है और वर्तमान की कोई परवाह नहीं करता जबकि जीवन वर्तमान में ही है । कल भी नही आता, जो है आज है और अभी है । जो समय बीत गया उसे याद करके मनुष्य को पछताना नही चाहिए । अगर अतीत में मनुष्य से कोई गलती हुई भी है तो उसे उससे सबक लेकर अपने वर्तमान को श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करना चाहिए ।मनुष्य को भविष्य में आने वाले संकट को देख कर भी घबराना नही चाहिए क्यों कि यदि मनुष्य का वर्तमान आनंदित है तो उसका भविष्य भी सुंदर होगा ।जीवन जीने की कला का सूत्र यही है की जन्म लेना हमारे हाथ में नही है लेकिन इस जीवन को सुंदर कैसे बनाया जाये यह हमारे हाथ में हैं। मनुष्य को हमेशा अपने साथ ईमानदारी से पेश आना चाहिए ।उसे अपनी शक्तियों और कमजोरियों का सटीक अनुमान होना चाहिए । वह अपने जीवन में क्या होना बनना चाहता है इसके लिए उसे अपनी क्षमता का आंकलन करना चाहिए। जो व्यक्ति अपना सही मूल्यांकन नहीं कर पाते वे अक्सर असफल होते हैं और इसके बाद वे अपने भाग्य को कोसते हैं या फिर दूसरे को दोष देते हैं । इसके विपरीत सच्चाई यह है कि जब सपने हमारे हैं तो कोशिश भी हमारी है और इससे मिली सफलता या असफलता भी हमारी है ।जब सफलता मिलती है तो व्यक्ति कहता है कि यह उसकी मेहनत का फल है लेकिन जब वह असफल होता है तो भाग्य को कोसता है जबकि सच्चाई यह है कि असफलता यह सिद्ध करती है कि सफलता का प्रयास पूरे मन से नही किया गया ।सफलता मनुष्य की इच्छाशक्ति के आधीन होती है।मन, बुद्धि और शरीर से इच्छित सफलता को पाने के लिए कठोर परिश्रम करने को तत्पर होना पड़ता है। जिस व्यक्ति में आत्मविश्वास का अभाव होता है ।वह अपने जीवन में कुछ भी नहीं कर सकता है।जब एक छोटा सा बीज विशाल वृक्ष बनने की इच्छा शक्ति रख सकता है तो मनुष्य अपना आत्मविश्वास इतना दृढ क्यों नहीं कर सकता है कि वह अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। अपना आत्मविश्वास दृढ करके मनुष्य को हमेशा अपने संकल्प को दृढ करना चाहिए ।

जीवन दर्शन
जीवन का सूत्र है बढ़ते चलो

जीवन एक अनवरत यात्रा है। अनंत का हिस्सा जब तक विभिन्न सोपान कर पुनः अपने मूल गंतव्य तक नही पहुंच जाता, सफर जारी रहता है। लोक जीवन में भी हम यही पाते हैं, जो जितनी कर्मठता से अपने लक्ष्यों की और प्रयासरत रहता है उतनी ही शीघ्रता से वह सफल होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के हरिशचंद्र आख्यान में इसी शिक्षा को सुप्रसिद्ध सूत्र चरैवेति चरैवेति के रूप में दिया गया है जिसका अर्थ होता है चलते रहो बढते रहो हरीशचन्द्र का पुत्र रोहित जब पिता से मिलने नगर आ रहा था तब इंद्र ने उसे पांच उपदेश दिए जिसमें श्लोक के अंत में टेक होता चरैवेति। उपदेश का मर्म था बैठने वाले की किस्मत बैठ जाती है, उठने वाले की उठती, सोने वाले की सो जाती है और चलने वाले की चमकने लगती है, इसलिए चलते चलो। लेकिन कई बार जीवन के सुखद अनुभवों का आकर्षण ही प्रगति में बाधक बन जाता है। बढ़ते रहने के संदेश को समझाने के लिए श्री राम कृष्ण परमहंस एक कथा सुनाते थे। ब्रह्मचारी ने लकड़हारे को वन में आगे बढ़ते जाने का उपदेश दिया। वह आगे बढ़ा तो चंदन का जंगल मिला। वह बहुत खुश हुआ और धनवान बना। फिर उसने सोचा कि मुझे तो आगे बढ़ने के लिए कहा गया था चंदन वृक्षों तक जाने के लिए नहीं, सो वह आगे बढ़ा वहां उसे चांदी की खान मिली। वहां भी संपन्न हो वह नहीं रूका, आगे बढ़ा तो सोने की खान मिली। लकड़हारा इतने पर भी शिथिल न हुआ और आगे उसे हीरे - रत्न आदि की खानें मिली जीवन की यात्रा में इसी प्रकार अनमोल खजाने बिखरे पड़े हैं जो पथिक पड़ाव को ही गंतव्य नहीं बनाता तथा निरंतर आगे बढ़ता जाता है वह अनंत ऐश्वर्य का अधिकारी बनता है।

बढ़े चलो, कभी मत रूको, पूर्णता के लिए बढ़े चलो। राह के कांटों से मत डरो, क्योंकि वे सिर्फ गंदा खून (बुराइयां) निकालते हैं।

नीरज
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

निर्मल

हमारा शरीर साफ हो। हम जहाँ भी रहें वह जगह भी साफ हो। कुत्ता भी कहीं बैठता है तो पहले अपनी पूंछ से जगह को साफ करता है, फिर बैठता है। शरीर की शुद्धि (स्नान, नियमित मल-मूत्र के त्याग आदि के द्वारा) न की जाए तथा वस्त्र एवं निवास आदि को भी गन्दा रखा जाय तो मन स्वाभाविक रूप से चंचल रहेगा। वैसी स्थिति में ध्यान चितवन भी नहीं कर सकते इसलिये बाह्य पवित्रता धर्म का प्रमुख अंग है। बाह्य पवित्रता का सम्बन्ध स्थूल शरीर से है तथा आन्तरिक पवित्रता का सम्बन्ध अन्तःकरण की शुद्धता से है। दिल का पवित्र होना तो बहुत ही जरूरी है और यह सत्य है कि अन्तःकरण को पवित्र किये बिना आध्यात्मिक मंजिल को कदापि प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

यह स्थूल शरीर-पवित्र शरीर नहीं हो सकता। लोगों ने बहुत ही उपाय किये पर यह पवित्र नहीं हो सका। दिल में दिन-रात युगल स्वरूप श्री राज श्यामा जी के चरणों तथा परमधाम के पच्चीस पक्षों के प्रेम-पूर्वक ध्यान से ही निर्मल हुआ जा सकता है। निर्मल होने के लिये चितवन से श्रेष्ठ अन्य कोई मार्ग नहीं है।

निसदिन ग्रहिए प्रेम सों, जुगल सरूप के चरन ।
निरमल होना यांही सो, और धाम बरनन ।।

यह शरीर तो नर्क से ही भरा हुआ है। जब जन्म होता है तो उस समय नवजात शिशु का शरीर मल, मूत्र तथा रक्त से सना हुआ होता है। बिना स्नान कराये उसके शरीर को देखने से यही कहा जा सकता है कि इतने समय (गर्भ में) तक वह नर्क के कष्ट में ही वास करता रहा। शरीर की रचना ऐसी है कि हड्डियों के ऊपर चादर की तरह से चमड़े (त्वचा) को चढ़ाया गया होता है। शरीर में ९ द्वार (मुख+नासिका+कान+आँख+मूत्रेन्द्रिय+मल द्वार) नरक के उन ९ द्वारों के समान है, जिनसे दिन-रात गन्दगी निकलती रहती है।

दूध, दही घी, शहद तथा शक्कर को पंचामृत कहते हैं। इनके योग से अति स्वादिष्ट पकवान बनाकर बहुत रूचिपूर्वक भोजन तो किया जाता है, स्वादिष्ट एवं सुगन्धित पकवान भी पचने के पश्चात् दुर्गन्धित मल-मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकलता है। नरक रूपी इस शरीर को ऊपर से कितना भी धोया जाय तो भी यह निर्मल होने वाला नहीं है। आज दिन तक शरीर के अंगों को धोने पर किसी का भी मन निर्मल नहीं हो सका है।

ए नरक निरमल क्यों होवहीं, जो ऊपर से अंग धोए ।
अंग धोए मन निरमल, कबहूं न होए कोए ।।

इस शरीर को यदि सौ बार भी स्नान कराय जाय तो भी यह किसी भी प्रकार से पवित्र होने वाला नहीं है। यदि आन्तरिक दृष्टि से विचार करके देखें तो यह सम्पूर्ण शरीर नरक तुल्य गन्दगी से भरा हुआ है।

यह शरीर तो नरक तुल्य गन्दगी से भरा ही हुआ है साथ ही यह शरीर अवगुणों से भरा हुआ है। हम कितना भी अपने अवगुणों को सुधारे कोई न कोई अवगुण तो रह ही जाता है। कोई भी पूर्ण नहीं है। अध्यात्म की जितनी ही ऊंचाईयों पर जो पहुंचता है वह उतना ही विनम्र और अहंकार से रहित होता है।

इस संसार में किसी के एक अवगुण की तरफ ध्यान दिलाने मात्र से ही उसका चेहरा तमतमा जाता है, जबकि श्री महामति जी अपने ही मुखारबिन्द से अपने अवगुणों को अनन्त बताते हैं।

रोम रोम कई कोट अवगुण, ऐसी मैं गुन्हेगार ।
ए तो कही मैं गिनती, पर गुन्हें को नहीं सुमार ।।

यह तो निश्चित है कि जितना ध्यान हम बाहरी शरीर को शुद्ध करने पर देते हैं, उतना यदि दिल को पवित्र कर लें, तो हमारे प्रियतम अक्षरातीत आधे पल के लिये भी हमसे दूर नहीं है-

अन्दर नाहीं निरमल, फेर फेर नहावें बाहेर ।
कर देखाई कोट बेर, तोहे ना मिले करतार ।।
जैसा बाहेर होत है, जो होए ऐसा दिल ।
तो अधखिन पिऊ न्यारा नहीं, माहें रहे हिल-मिल ।।

हमारे इस नश्वर शरीर का एक क्षण का भी भरोसा नहीं है तो दिन, माह और वर्ष की बात ही क्या है? यह तो श्वासों पर ही चल रहा है। पता नहीं, कब श्वांस बन्द हो जाय। इतना जानते हुए भी लोग उस सच्चिदानन्द परब्रह्म की भक्ति करना भूल जाते हैं और इस नश्वर शरीर की बाह्य सजावट पर ही सारा ध्यान केन्द्रित किये हुए हैं। उन्हें पता ही नहीं होता कि वे जिन सौन्दर्य प्रसाधनों (क्रीम, लिपिस्टिक, पाऊडर, सुगन्धित द्रव्य, कीमती साबुन) का प्रयोग करते हैं, उनमें मूक जानवरों की आहें छिपी होती हैं। इस झूठे शरीर को क्रीम, लिपिस्टिक, पाऊडर लगा-लगा कर सुन्दर बानाने से हम दिल के सुन्दर तो नहीं बन सकते। अगर अपने दिल को सुन्दर बनाना है तो दिल में नख से शिख तक श्री युगल स्वरूप श्री राज-श्यामा जी को बसाना पड़ेगा।

कई लोगों को अपनी सुन्दरता पर बड़ा अभिमान होता है। वह दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर इतने अभिमान में भर जाते हैं कि इनका सिर आकाश तक पहुंचा होता है। झूठे शरीर के ऊपर गर्व करना नादानी ही है।

अन्त में मैं यही कहूंगी-निर्मल होने का एक मात्र मार्ग है-आत्मा के प्रियतम उस सच्चिदानन्द अक्षरातीत की पहचान करना तथा प्रेम पूर्वक उनके चरण कमलों को अपने हृदय में बसा लेना।

बबली (नलिनी) सरसावा

धार्मिक होने के साथ धर्म को जानना भी जरूरी

एक राजा बहुत धार्मिक आचरण के थे। उन्हें अपने धार्मिक होने पर गर्व भी था। वे जिस भी विद्वान या साधु- संत से मिलते हमेशा एक प्रश्न करते, धर्म क्या है? चूंकि वे धार्मिक थे अतः प्रश्न के साथ यह भूमिका भी बनाते कि मैं धार्मिक हूँ, इसलिए सबसे धर्म का सही अर्थ जानना चाहता हूँ। मुझे आज तक किसी के उत्तर से संतोष नहीं मिला। एक दिन राजा की मुलाकात एक फकीर से हुई।

राजा ने वही प्रश्न पूछा-धर्म क्या है? फकीर ने प्रतिप्रश्न किया- कौन- सा धर्म, जिससे धार्मिकता आती है वह धर्म या जिससे खुद को जाना जा सकता है वह धर्म? किस धर्म के लिए पूछ रहे हो?राजा चौंक गया। उसने पूछा धर्म भी अलग- अलग हैं?फकीर बोला- सवाल अलग- अलग होने का नहीं है। भाषा का धर्म है धारण करना, संतो का धर्म है खुद को जानना, संसारी का धर्म है मनोवांछित की पूर्ति करना। तुम किस धर्म को जानना चाहते हो राजा? अब राजा भ्रम में पड़ गया। उसने फकीर से कहा- मुझे उलझाए न, सीधी बात करें। तब फकीर ने कहा- प्रत्येक के लिए उसका धर्म वह है जिससे वह उसको जान सके । धार्मिक होने से आप सत्य नहीं पा सकते, हां अपने धर्म में होने का सत्य पा सकते हैं। तो धर्म में होना और धार्मिक होना इसमे फर्क है। धर्म एक स्वाद है, धार्मिक होना भोजन जैसा है। धार्मिक एक कर्मकाण्ड है, धर्म एक अनुभूति है। राजा को अब समझ में आ चुका था कि केवल धार्मिक आचरण हो जाने से धर्म जीवन में नहीं उतर सकता। धर्म के लिए थोड़ा अकेला होकर स्वयं को जानना पड़ेगा और तभी धर्म का सही स्वरूप समझ में आएगा।

दूसरों को सुधारने से पहले स्वयं सुधरें

एक व्यक्ति अपने पुत्र को लेकर एक महात्मा के पास गया और उनसे कहा-महाराज, मेरा यह पुत्र रोज गुड़ खाता है और न दो तो रोता है, लड़ाई-झगड़ा करता है। कृपया कोई उपाय बताइए, जिससे इसकी यह आदत छूट जाए। महात्मा ने कहा-तुम एक माह बाद मेरे पास आना तब उपाय बताऊंगा। एक माह बाद महात्मा ने बच्चे को अपने पास बुलाया और कुछ देर बात करने के बाद कहा-बेटा देख, अब कभी गुड़ मत खाना और गुड़ के लिए लड़ाई भी मत करना।

महात्मा द्वारा की गई इस तरह की बातचीत का असर बच्चे के मन पर हुआ। उसने उसी दिन से गुड़ खना छोड़ दिया। वह व्यक्ति धन्यवाद देने के लिए गया और कहा-महात्मा जी, लगता है आपको कोई जादू आता है जो आपके एक बार कहने से ही मेरे पुत्र ने गुड़ खाना छोड़ दिया, लेकिन मुझे यह समझ नहीं आ रहा है कि आपके एक ही वाक्य से ऐसा होना था तो आपने एक माह बाद आने को क्यों कहा, उसी समय आपने गुड़ छोड़ने की बात उसे क्यों नहीं समझाई ?महात्मा मुस्कुराकर बोले-जो मनुष्य स्वयं संयम नियम का पालन नहीं करता हो, यदि वह दूसरों को पालन करने को कहेगा तो उसके उपदेश का क्या असर होगा मैं प्रतिदिन भोजन के साथ गुड़ खाता था। जब मुझे बालक को मना करना था तो पहले मैंने स्वयं गुड़ खाना बंद किया। उसके बाद ही मैं उसे छोड़ने के लिए कह सका।

दर असल संयम का आरंभ स्वयं से होना चाहिए। संयम बोलने का नहीं, पालन का विषय है। संयम के लिए व्यक्ति के अंदर दृढ़ता आवश्यक होती है। जिस व्यक्ति के अंदर दृढ़ता नहीं है वह संयम का पालन नहीं कर सकता।

संयम का आरंभ स्वयं से होना चाहिए। संयम बोलने का नहीं, पालन का विषय है। इसके लिए दृढ़ता आवश्यक होती है।

ग्यारहवां वार्षिकोत्सव

प्राणाधार सुन्दरसाथ जी!

सप्रेम प्रणाम जी!

आपको हर्ष के साथ सूचित किया जाता है कि अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की छत्रछाया एवं परमहंस महाराज श्री राम रतन दास जी की कृपा व धर्मवीर जागनी रत्न सरकार श्री जगदीश चन्द्रजी की प्रेरणा से श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा का ग्यारहवां वार्षिकोत्सव २६/०४/२०१७ से ३०/०४/२०१७ तक होना निश्चित किया गया है। अतः आप सभी से विनम्र अनुरोध किया जाता है कि सभी सुन्दरसाथ एवं धर्म प्रेमी सज्जन समयानुसार पधार कर ब्रह्मवाणी के अमृतरस का पान करें।

कार्यक्रम

(१) २६ अप्रैल – पाँच पंचदिवसीय तारतम वाणी परायणों का शुभारम्भ, ध्यान, वाणी गायन एवं चर्चा
(२) २७ अप्रैल से २९ अप्रैल – चर्चनी, ध्यान, श्री मुखवाणी चर्चा, वाणी गायन
(३) ३० अप्रैल – चर्चनी, ध्यान, वाणी गायन, श्री मुखवाणी चर्चा तथा पंचदिवसीय परायणों का समाप्ति पूजन एवं भण्डारा

विशेष आकर्षण

(१) २७ अप्रैल– तारतम वाणी की पांच भाषाओं में व्याख्यान प्रतियोगिता
(२)२८ अप्रैल – पांच भाषाओं में वाद विवाद प्रतियोगिता
(३)२९ अप्रैल – ज्ञानपीठ के छोटे विद्यार्थियों द्वारा अष्टाध्यायी पाठ

विशेष सूचना – (१) कृपया अपने साथ ओढ़ने की चादर अवश्य लायें।
(२) सादे वस्त्रों में ही आपकी शोभा है।

आपके आगमन की प्रतीक्षा में
श्री राजन स्वामी जी एवं ज्ञानपीठ परिवार

निवेदक
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रष्ट सरसावा
जिला-सहारनपुर (उ. प्र.)
मो. न. ८६५०८५१०१०, ९४१२०१६३२२

संरक्षक	उपसंरक्षक	अध्यक्ष	महासचिव
अरूण मिड्ढा	माणिक भाई	मधुसूदन मल्होत्रा	राजेन्द्र सिंह चौहान
०९२१२३२४१७५	०९८२४०८७५४९	०९८१४४६२१०२	०९४१२०१६३२२

विशेष सूचना

जो सुन्दरसाथ श्री प्राणनाथजी की तारतम वाणी में निहित ब्रह्मज्ञान को प्रचारित करने के लिए प्रचारक के रूप में अपना जीवन समर्पित करना चाहते हैं तथा श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा में रह कर श्री राजन स्वामी जी एवं अन्य आचार्यों के निर्देशन में वाणी, बीतक, चर्चनी व अन्य गन्थों का अध्ययन करना चाहते हैं, वे ज्ञानपीठ से सम्पर्क करें। ग्रन्थों के अध्ययन के साथ-साथ अंग्रेजी व संस्कृत भाषा में बोलना भी सिखाया जायेगा, आने वाले सुन्दरसाथ की आयु १५ से ५० वर्ष के बीच होनी चाहिए तथा उन्हें ५ वर्ष सरसावा में रहकर अध्ययन करना होगा, जिससे कि सभी आवश्यक ग्रन्थों का ज्ञान व प्रचारशैली का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें। ऐसे अध्ययनरत सुन्दरसाथ के आहार-विहार आदि की पूरी व्यवस्था ज्ञानपीठ के द्वारा की जाएगी।

नोटः- १. इस पंचवर्षीय पाठयक्रम की कक्षाएं २ मई २०१७ से प्रारम्भ होंगी। इसमें भाग लेने वाले सुन्दरसाथ से निवेदन है कि तब तक अपने सभी उत्तरदायित्वों को पूरा कर लें तथा आने पर अपना आवश्यक सामान साथ ले कर आवें।

२. महिला सुन्दरसाथ से विशेष अनुरोध है कि उन्हें सादे व मर्यादित वेश-भूषा में ही रहना होगा।

इच्छुक सुन्दरसाथ अपना नाम लिखवाने के लिए सम्पर्क करें।

प्रणाम जी

माधव जी- ८६५०८५१०१०

करन जी- ८८५६१५७३४८